जन्म, जीवन और मृत्यु के पार

एक आध्यात्मिक खोज : जीवंतता, जागरूकता और मोक्ष

लेखक — विजय शर्मा

लेखक की टिप्पणी

यह पुस्तक लेखक की आध्यात्मिक सोच, प्रश्नों और जीवन-दृष्टि की खोज है। इसमें मृत्यु के बाद जीवन,

पुनर्जन्म, कर्म, ध्यान और मोक्ष से जुड़े विचारों को आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया

है। इन्हें वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित तथ्य के रूप में नहीं, बल्कि चिंतन और खोज के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

अध्याय 1 — एक अनजानी यात्रा

हम सभी जानते हैं कि हमारा जन्म होता है। एक दिन हम इस संसार में आते हैं, आँखें खोलते हैं और जीवन की यात्रा

शुरू करते हैं। लेकिन एक प्रश्न आज भी हमारे सामने खड़ा है—हम जन्म क्यों लेते हैं?

ठीक उसी तरह, एक दूसरा प्रश्न भी हमारे सामने है—मृत्यु क्यों होती है?

हम जानते हैं कि एक दिन शरीर अपनी यात्रा समाप्त कर देता है। साँसें रुक जाती हैं, शरीर शांत हो जाता है और हम

जिसे “मृत्यु” कहते हैं, वह घटित होती है। इसके बाद हम अक्सर यही मान लेते हैं कि सब कुछ समाप्त हो

गया—हमारा जीवन, हमारी पहचान और हमारा अध्याय।

लेकिन क्या वास्तव में सब कुछ समाप्त हो जाता है?

यही वह प्रश्न है जहाँ से हमारी वास्तविक खोज शुरू होती है। मृत्यु के बाद क्या होता है, इसकी निश्चित जानकारी

हमारे पास नहीं है। हम अलग-अलग धर्मों, दर्शन और आध्यात्मिक परंपराओं में इसके अनेक उत्तर पाते हैं। लेकिन

इन उत्तरों से आगे भी एक रहस्य मौजूद है—मृत्यु के बाद की यात्रा का रहस्य।

यह पुस्तक उसी खोज की शुरुआत है। क्या जीवन वास्तव में समाप्त होता है, या केवल उसका एक रूप समाप्त होता

है?

अध्याय 2 — जब जीवन सहज था

जब हम छोटे होते हैं, तब हम जीवन को जीते हैं। बचपन में एक छोटी-सी चीज भी हमें खुश कर देती है। बारिश की बूँदें,

मिट्टी की खुशबू, दोस्तों के साथ खेलना, आसमान को देखना, बिना किसी कारण हँसना—इन सबके लिए हमें खुशी

ढूँढने की जरूरत नहीं पड़ती। हम बस खुश होते हैं।

फिर हम बड़े होते हैं। धीरे-धीरे जिम्मेदारियाँ आने लगती हैं। पढ़ाई, काम, पैसा, परिवार, भविष्य और समाज की

अपेक्षाएँ जीवन का हिस्सा बन जाती हैं। अब हमारा बहुत-सा समय जीवन को महसूस करने में नहीं, बल्कि जीवन की

जरूरतों को पूरा करने में बीतने लगता है।

बचपन में हमें खुशी खोजनी नहीं पड़ती थी। बड़े होकर हम खुशी को बाहर ढूँढने लगते हैं। शायद समस्या उम्र में नहीं

है। शायद हमने जीवन को जीने के बजाय उसे संभालना और चलाना सीख लिया है।

शायद हमें बचपन में वापस जाने की जरूरत नहीं। शायद हमें उस बच्चे की तरह वर्तमान में होना फिर से सीखना है।

अध्याय 3 — कर्तव्यों के बीच खोता हुआ जीवन

जैसे-जैसे हम बड़े होते जाते हैं, हमारा जीवन धीरे-धीरे उलझता जाता है। सबसे पहले माता-पिता की चिंता होती है। फिर

अपने भविष्य की चिंता। फिर अपने रिश्तों की चिंता। फिर विवाह और वैवाहिक जीवन की जिम्मेदारियाँ। उसके बाद

बच्चों का भविष्य, उनकी पढ़ाई, उनका जीवन और उनकी सुरक्षा।

एक चिंता खत्म होने से पहले दूसरी चिंता सामने खड़ी हो जाती है। इंसान अपने कर्तव्यों का पालन करता रहता है,

लेकिन धीरे-धीरे जीना भूल जाता है।

वह अपने माता-पिता के लिए करता है, अपने जीवनसाथी के लिए करता है, अपने बच्चों के लिए करता है, अपने

परिवार के लिए करता है। लेकिन इन सबके बीच एक दिन वह शायद यह भूल जाता है कि—इन सबके बीच वह स्वयं

कहाँ है?

कर्तव्य निभाना गलत नहीं है। लेकिन क्या केवल कर्तव्य निभाना ही जीवन है? शायद जीवन हमें केवल कर्म करने

के लिए नहीं मिला। शायद कर्म करते हुए जागरूक रहना और जीवन के प्रत्येक क्षण को महसूस करना भी उतना ही

आवश्यक है।

अध्याय 4 — जीवंत होकर जीना

अब प्रश्न यह है—जीवंत होकर कैसे जिया जाए? क्या इसके लिए हमें अपने कर्म छोड़ देने चाहिए? नहीं। जीवन में

जो कर्तव्य हमारे सामने हैं, उन्हें हमें करते रहना चाहिए।

जीवंत होकर जीने का अर्थ शायद यह है कि जो कुछ हमारे सामने घटित हो रहा है, हम उसे पूरी तरह देखें और महसूस

करें। बारिश हो रही है—उसे देखो। हवा चल रही है—उसे महसूस करो। कोई व्यक्ति बात कर रहा है—उसकी बात को

पूरी तरह सुनो। खुशी आई है—उसे महसूस करो। दुःख आया है—उसे भी महसूस करो।

घटना से ज्यादा हमें हमारे अपने विचार परेशान कर सकते हैं। एक छोटी-सी घटना घटती है और मन उसके बारे में

अतीत की यादें, भविष्य की आशंकाएँ और कल्पनाएँ बनाने लगता है। घटना कुछ क्षण की थी, लेकिन मन उसे घंटों,

दिनों और कभी-कभी वर्षों तक ढोता रहता है।

क्या ऐसा संभव है कि हम घटना को केवल देखें, उसे महसूस करें और फिर उसे गुजर जाने दें? यहीं जागरूकता का जन्म

होता है। विचार आएँ तो हम उन्हें पहचानें, लेकिन हर विचार के साथ बह न जाएँ। कभी-कभी मन शांत हो जाए—बस

देखना, बस महसूस करना, बस उपस्थित रहना।

अध्याय 5 — जीवन केवल बीतना नहीं है

जीवन घटता नहीं है। जीवन जिया जाता है। होशपूर्वक जीना ही जीवन है।

यदि मनुष्य बिना जागरूकता के केवल अपनी दिनचर्या दोहराता रहे, तो वह केवल जीवन की अवधि पूरी कर रहा है।

जन्म लेना, काम करना, जरूरतें पूरी करना, परिवार बनाना, बच्चों की जिम्मेदारियाँ निभाना, बूढ़ा होना और अंततः

मृत्यु को प्राप्त होना—क्या केवल यही जीवन है?

साँस लेना जीवन का प्रमाण हो सकता है, लेकिन केवल साँस लेना जीवन का अनुभव नहीं है। हम देखते हैं, लेकिन क्या

हमने सच में देखना सीखा है? हम प्रेम करते हैं, लेकिन क्या हम प्रेम के उस क्षण में पूरी तरह उपस्थित होते हैं?

जीना केवल समय का गुजरना नहीं है। जीना है—उस क्षण में उपस्थित होना, जो घट रहा है उसे देखना, उसे महसूस

करना और बिना हर अनुभव को तुरंत विचारों, डर और कल्पनाओं में बदल दिए उसे जानना।

हम पैदा इसलिए नहीं हुए कि केवल जन्म और मृत्यु के बीच की दूरी तय कर दें। हम पैदा हुए हैं जीने के लिए।

अध्याय 6 — जब मृत्यु सामने खड़ी होती है

जब मृत्यु हमारे सामने आकर खड़ी होती है, तब शायद पहली बार जीवन हमें साफ दिखाई देता है। तब मनुष्य पीछे

मुड़कर देखता है। उसे वे दिन याद आते हैं जो चिंता में बीत गए, वे अवसर याद आते हैं जिन्हें उसने छोड़ दिया और वे

रिश्ते जिन्हें उसने समय नहीं दिया।

तब उसके भीतर प्रश्न उठ सकता है—"मैं जिस तरह जी सकता था, उस तरह मैंने जीवन क्यों नहीं जिया?" यही वह

क्षण है जहाँ पछतावा जन्म लेता है। लेकिन तब समय उसके हाथ में नहीं रहता।

शायद जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है—जब हमारे पास समय होता है, तब हम जीवन को समझ नहीं पाते; और जब

जीवन को समझने लगते हैं, तब समय हमारे हाथ से निकल चुका होता है।

इसलिए प्रश्न यह नहीं होना चाहिए कि मृत्यु के समय मैं जीवन को कैसे पकड़ूँगा? प्रश्न यह होना चाहिए —मृत्यु

आने से पहले मैं जीवन को कितनी पूर्णता से जी रहा हूँ?

अध्याय 7 — जब मृत्यु भय नहीं रहती

जिस मनुष्य ने जीवन को सच में जिया है, उसके लिए मृत्यु का अर्थ शायद कुछ और हो जाता है। उसने अपने जीवन

को केवल काटा नहीं, उसे महसूस किया है। उसने प्रेम किया, दुःख देखा, हँसा, रोया, अपने कर्तव्य निभाए और उन

क्षणों में उपस्थित रहने का प्रयास किया।

जब मृत्यु उसके सामने आती है, तो उसके भीतर शायद वह पछतावा नहीं होता जो उस व्यक्ति के भीतर होता है जिसने

जीवन को हमेशा किसी आने वाले कल के लिए टाल दिया। वह अपने भीतर देख सकता है और कह सकता है—"मैंने

अपना जीवन जिया है।"

वह मृत्यु को रोकने की कोशिश नहीं करता। वह उससे लड़ता नहीं। वह उसे दुश्मन की तरह नहीं देखता। वह केवल उसे

देखता है।

समर्पण का अर्थ हार मानना नहीं है। यह जीवन से भागना भी नहीं है। यह उस क्षण को स्वीकार करना है जिसे हम

रोक नहीं सकते। मृत्यु के सामने शायद एक शांति संभव है, क्योंकि भीतर यह प्रश्न नहीं बचता —"काश मैंने जीवन

जिया होता।”

अध्याय 8 — मृत्यु: अंत नहीं, एक आरंभ

हम मृत्यु को अक्सर जीवन का अंत समझते हैं। लेकिन क्या मृत्यु अंत है, या किसी दूसरी यात्रा की शुरुआत?

यदि जीवन हमारे लिए केवल संघर्ष है, तो मृत्यु भयावह लगेगी। लेकिन जिसने जीवन को जागरूक होकर जिया है,

उसके लिए मृत्यु का अर्थ अलग हो सकता है। तब मृत्यु शायद एक विश्राम, एक विराम, एक ऐसी शांति है जिसके

आगे भाषा छोटी पड़ जाती है।

हम हर रात सोते हैं। गहरी नींद में कुछ समय के लिए संसार और विचारों का बोझ हमारे अनुभव से दूर हो जाता है। एक

गहरी शांति होती है। अब कल्पना कीजिए—यदि मृत्यु भी किसी गहरी नींद जैसी हो, लेकिन उससे कहीं अधिक गहरी,

तो वह कैसी होगी?

यह एक दार्शनिक कल्पना है; मृत्यु के बाद वास्तव में क्या अनुभव होता है, इसे निश्चित रूप से कहने का हमारे पास

प्रमाण नहीं है। फिर भी यह विचार हमें मृत्यु को अलग दृष्टि से देखने में सहायता कर सकता है।

अध्याय 9 — मृत्यु की तैयारी जीवन से शुरू होती है

यदि मृत्यु जीवन की यात्रा का एक पड़ाव है, तो उसकी तैयारी मृत्यु के समय से नहीं, बल्कि जीवन के समय से ही शुरू

होनी चाहिए।

ध्यान, योग और श्वास के प्रति जागरूकता अपने भीतर देखने के मार्ग हो सकते हैं। साँस अंदर आती है। साँस बाहर

जाती है। बस उसे देखना है। न उसे जबरदस्ती बदलना, न रोकना—बस उसके आने और जाने को देखना।

अभ्यास के साथ मनुष्य अपने भीतर उठने वाले विचारों को अधिक स्पष्ट रूप से देखना सीख सकता है। विचार आते

हैं, विचार जाते हैं। हम उन्हें देखते हैं। और धीरे-धीरे यह समझ आ सकती है कि मैं अपने विचार नहीं हूँ।

कभी-कभी ध्यान में ऐसे क्षण आ सकते हैं जब विचारों की गति धीमी महसूस हो और भीतर एक गहरा मौन अनुभव

हो।

एक खालीपन, जो डरावना नहीं होता। न अतीत को पकड़ना, न भविष्य को पकड़ना—बस होना, बस देखना, बस साँस

के साथ उपस्थित रहना।

शायद मृत्यु की सबसे सुंदर तैयारी है—जीते-जी शांति को पहचान लेना।

अध्याय 10 — मृत्यु का अभ्यास और मृत्यु पर विजय

साँसों का रुक जाना शरीर की एक प्रक्रिया का समाप्त होना है। लेकिन क्या शरीर के भीतर जो जीवन है, वह भी वहीं

समाप्त हो जाता है? हम इसे निश्चित रूप से नहीं जानते।

मृत्यु की तैयारी शायद अपने भीतर के भय को समझने की तैयारी है। जो व्यक्ति जीवन में ही अपने विचारों, इच्छाओं,

भय और आसक्तियों को जागरूकता से देखना सीखता है, वह धीरे-धीरे छोड़ना सीख सकता है।

हर साँस के साथ कुछ आता है और कुछ जाता है। हम उसे पकड़कर नहीं रखते। जीवन भी शायद इसी प्रवाह की तरह

है।

अंत में मृत्यु हमें सबसे बड़ा छोड़ना सिखाती है।

“मरने का अभ्यास” मृत्यु को बुलाना नहीं है। इसका अर्थ है—हर क्षण को पूरा जीना और फिर उसे जाने देना।

पुरानी पीड़ा को जाने देना, अनावश्यक भय को जाने देना, अतीत को जाने देना और पकड़ को ढीला करना।

मृत्यु पर विजय का अर्थ मृत्यु को हरा देना नहीं है। शायद इसका अर्थ इतना है कि मृत्यु का भय हमारे जीवन को

नियंत्रित न करे।

अध्याय 11 — शून्यता और मोक्ष

जीवन कभी समाप्त नहीं होता—ऐसा अनेक आध्यात्मिक परंपराएँ मानती हैं। शरीर यहाँ रह जाता है, लेकिन चेतना या

आत्मा के बारे में यह धारणा रही है कि उसकी यात्रा शरीर के समाप्त होने के साथ समाप्त नहीं होती।

मृत्यु के बाद आगे की दिशा को कर्मों और भीतर बची इच्छाओं से जोड़ने वाली आध्यात्मिक मान्यताएँ भी हैं। कुछ

इच्छाएँ पूरी होती हैं, कुछ अधूरी रह जाती हैं। ऐसी अधूरी इच्छाओं को पुनर्जन्म की धारणा से जोड़ा गया है।

यदि कोई इच्छा नहीं बची, यदि पकड़ने के लिए कुछ नहीं बचा, यदि मनुष्य ने जीवन को पूरा जी लिया और अंत में

किसी चीज को अपने साथ बाँधकर रखने की कोशिश नहीं की—तब प्रश्न आता है: क्या शून्यता ही मुक्ति का द्वार

है?

शून्यता का अर्थ विचारों से युद्ध करना नहीं है। विचार आएँ, उन्हें आने दें। वे जाएँ, उन्हें जाने दें। आप केवल जागरूक

रहें। अपनी साँस को देखें—साँस अंदर, साँस बाहर।

शायद मोक्ष उस अवस्था का नाम है जहाँ पकड़ समाप्त हो जाती है—इच्छा की, भय की, अहंकार की। यह पुस्तक

इसे एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण के रूप में देखती है, अंतिम प्रमाणित तथ्य के रूप में नहीं।

अध्याय 12 — जीवंतता से मोक्ष तक

इस यात्रा में एक गहरा विचार सामने आता है—क्या जो मनुष्य सचमुच जीवंत होकर जीता है, उसे फिर से जन्म लेना

पड़ता है? आध्यात्मिक दृष्टि से एक विचार यह है कि जिसने जीवन को जागरूक होकर जिया और अपनी आसक्तियों

से मुक्त होना सीखा, वह जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो सकता है।

इसके विपरीत, जिसकी इच्छाएँ और आसक्तियाँ उसे भीतर से बाँधे रहीं, उसके लिए यह यात्रा समाप्त नहीं

होती—बार-बार जन्म और मृत्यु का चक्र चलता रहता है, जब तक मुक्ति न मिले।

इसीलिए प्राचीन साधु, संत, ऋषि और मुनि साधना और तपस्या में लगे। उनकी खोज भीतर की थी—मन को एकाग्र

करना, इच्छाओं को देखना, विचारों की धारा से स्वयं को अलग पहचानना और उस मौन को अनुभव करना जिसे हम

शून्यता कह रहे हैं।

साँस अंदर। साँस बाहर। बस देखते रहें। शुरुआत में मन भटकेगा, लेकिन अभ्यास का अर्थ ही बार-बार लौटना है। समय

के साथ जागरूक होकर जीना जीवन का स्वाभाविक हिस्सा बन सकता है।

तब जीवंतता कोई अलग काम नहीं रह जाती। वह जीवन जीने का ढंग बन जाती है। आप काम करते हैं, परिवार के साथ

रहते हैं, सुख और दुःख से गुजरते हैं—लेकिन जागरूक रहते हैं।

मोक्ष की तैयारी अभी से शुरू होती है—हर साँस में, हर जागरूक क्षण में, हर उस क्षण में जब हम किसी चीज को

पकड़ने के बजाय उसे जाने देना सीखते हैं।

जीवन को जीवंत होकर जियो। साँस को जागरूक होकर देखो। जो आए, उसे आने दो। जो जाए, उसे जाने दो।